दैनिक भास्कर

Date: 18-01-17

जायरा ने नहीं, कला ने मांगी कट्टरता से माफी

कट्टरता के कोहरे में पाकिस्तान ही नहीं भारत भी घिरता जा रहा है और इसका ताजा प्रमाण है 'दंगल' फिल्म की अभिनेत्री जायरा वसीम द्वारा फेसबुक और इंस्ट्राग्राम पर अपनी कला की बढ़ती प्रशंसा के लिए माफी मांगना। यह अच्छी बात है कि जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला से लेकर आमिर खान, जावेद अख्तर और अनुपम खेर जैसी फिल्मी हस्तियों ने जायरा के पक्ष में बयान दिया है और उसे हर तरह का समर्थन देने का भरोसा दिलाया है लेकिन, 16 साल की लड़की को अच्छे काम के लिए माफी मंगवाना न तो इस्लाम के बड़प्पन का प्रतीक है और न ही कश्मीर की आज़ादी के दीवानों के।

दरअसल कश्मीर की आज़ादी का जो आंदोलन कभी अपने को सेक्यूलर और कश्मीरियत का हिमायती बताता था अब वह कट्टपंथी जेहनियत में कैद होता जा रहा है। उसे इस बात से खतरा महसूस होता है कि उसके भीतर सरकारी और गैर-सरकारी सफलता का कोई और आदर्श विकसित हो और युवा पत्थर फेंकने और बंदूक उठाने की बजाय उस दिशा में बढ़ें। पिछले साल जब उग्रवादी बुरहान वानी के मुठभेड़ में मारे जाने के बाद कुछ चैनलों ने कभी भारतीय सिविल सेवा टॉप करने वाले आईएएस अधिकारी शाह फैजल को रोल मॉडल बनाने की कोशिश की तो उन्होंने भी भयभीत होकर विरोध किया था। उनका कहना था कि भारतीय चैनल घाटी में राष्ट्रवाद को मजबूत करने की बजाय उसे कमजोर कर रहे हैं और उन लोगों को भी तनाव में डाल रहे हैं जो देश के लिए अपना दायित्व मुस्तैदी से निभाना चाहते हैं।

आतंकियों ने न तो भारत की आज़ादी की लड़ाई से और न ही दुनिया के महान संघर्षों से बड़प्पन और उदारता सीखने का प्रयास किया। वे जनता पर हथियार और धमकी के माध्यम से नायकत्व थोपना चाहते हैं और नारा आज़ादी का लगाते हैं। इसीलिए मलाला यूसुफजई से लेकर जायरा वसीम तक वे सभी प्रतीक तत्काल उनके निशाने पर आ जाते हैं, जो रचनात्मक संदेश के जरिये नारी को कुछ मुक्ति देते हैं। कश्मीरी समाज न तो महिलाओं की आज़ादी के विरुद्ध रहा है और न ही उनके रचनात्मक योगदान के। ऐसे में फेसबुक के माध्यम से कट्टरता फैलाने वालों को सोचना चाहिए कि वे न सिर्फ एक उदार और खुले माध्यम का दुरुपयोग कर रहे हैं बल्कि अपने समाज की परम्परा से भी गद्दारी कर रहे हैं। हमें मानवता के उदार मूल्यों और कला को भयातुर नहीं होने देना चाहिए।

Date: 18-01-17

कर्ज से समृद्धि के दौर में नकदी से नफरत

मेरे कड़े स्वभाव के मध्यमवर्गीय पिता ने जो शुरुआती चीजें सिखाई थीं (और मुझे लगता है कि उन दिनों ज्यादातर पालक अपने बच्चों को यही सिखाते थे) उनमें यह भी था कि कभी पैसा उधार मत लो। आज की शब्दावली में कहें तो इसका अर्थ होगा : कर्ज से बचो। यह लगभग यही कहना हुआ कि बिज़नेस करना ही बंद कर दो, क्योंकि आज हम जिस दुनिया में रह रहे हैं वह पैसे से ही चलती है और आमतौर पर उधार पर

लिए पैसे से। अब तक जैसा हम सब समझ चुके हैं कि अब पैसा उधार लिए बगैर किसी भी प्रकार का बिज़नेस करना संभव नहीं है। टाटा स्टील पर 75,000 करोड़ रुपए का कर्ज है। मेरा स्थानीय भेलपुरी वाला 750 रुपए के कर्ज से काम चलाता है।

हम एक कदम और आगे बढ़ गए हैं और कर्ज अब न सिर्फ हमारे बिज़नेस का हिस्सा है बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी का भी अंग है। इन दिनों यदि कोई मेरे पास जॉब के लिए आता है तो पहली बात वह कहता/कहती है : मेरी ईएमआई करीब इतनी-इतनी है तो कृपया इतना पक्का करें कि जो वेतन मैं घर ले जाऊं उससे इनकी व्यवस्था हो जाए। संक्षेप में कर्ज आज हमारी जिंदगी को संचालित कर रहा है। हम सब गले-गले तक इसमें डूबे हैं। कार, फ्लैट, स्मार्ट फोन व गैमिंग लेपटॉप की ईएमआई चुकाने से लेकर अखबार-पत्रिकाओं, बिजली, किराना, लॉन्ड्री, वाई-फाई, डीटीएच या केबल, अमेजॉन या नेटफ्लिक्स और न जाने किस-किस के मासिक बिल तक। यहां तक कि ई-कॉमर्स साइट्स भी अब हमारे लिए वे सारी चीजें खरीदना आसान बना रही हैं, आपने ठीक पहचाना आकर्षक तरीके से वर्णित ईएमआई के जरिये, जिनकी हमें आवश्यकता नहीं है (जैसे घड़ियां, कैमरा तथा बड़े और बड़े होते जाते टीवी, जबकि ज्यादा से ज्यादा लोग अब सेल फोन पर चीजें देख रहे हैं)। मुझे तो अब भी पता नहीं है कि इस ईएमआई का पूर्ण रूप क्या है लेकिन, मैं यह जानता हूं कि यह उनके लिए बहुत बड़ा बोझ है, जो इसमें जीते हैं।

बुद्धिमान अर्थशास्त्री बताते हैं कि कर्ज के कारण ही शक्तिशाली चीन घुटनों के बल आने की कगार पर पहुंच गया है। हाल ही के वर्षों में बचत का रुझान रखने वाली आबादी के लिए ख्यात भारत सारा विवेक दरकिनार कर तूफानी खरीद में लग गया है। इसके कारण बाजार में न जाने कैसे-कैसे प्रोडक्ट और ब्रैंड आ गए हैं, उनसे एकदम अलग जो हमने बड़े होते हुए देखे थे। आज देश में 23 करोड़ डॉलर का सेक्स टॉय बिज़नेस 34.8 फीसदी की दर से बढ़ रहा है, जो 140 अरब डॉलर के शिक्षा के बाजार के बढ़ने की रफ्तार से तेज है। और हां, दोनों ही कर्ज से चलते हैं। लोग जहां से भी संभव हो सीखने, घूमने-फिरने, मजे करने, बेहतर कपड़े पहनने और बैरिएट्रिक सर्जरी को मुनाफे का बिज़नेस बनाने जितना खाने के लिए कर्ज ले रहे हैं। किसी को परवाह नहीं है कि हर खर्च के साथ अप्रत्यक्ष कर जुड़ा है, जो समृद्ध वर्ग को उतनी ही चोट पहुंचाता है, जितनी वह गरीबों को पहुंचाता है।

सरकार यह जानती है। उसे मालूम है कि हमें अपने कर्ज से कितना लगाव है, इसलिए इसे और बढ़ावा देने के लिए वह ब्याज दरें गिरा रही है। कुछ साल पहले जब मैंने फ्लैट खरीदा था तो उसकी तुलना में आज होम लोन 20 फीसदी सस्ता है। आज मैं ऐसे लोन पर कार खरीद सकता हूं (और शहरभर में चला भी सकता हूं), जिसमें सालभर कोई ईएमआई नहीं लगती। मेरे आईफोन के लिए इतने आकर्षक सौदे उपलब्ध हैं कि मैं हर साल इसे अपग्रेड करना चाहता हूं। मेरी हर दूसरी आवश्यकता के लिए तत्काल पैसे मुहैया कराने के लिए क्रेडिट कार्ड हाजिर है (हालांकि, 3 फीसदी प्रतिमाह की दर से पैसा उधार लेने के लिए कुछ तरकीब और मुझे लगता है थोड़ी मूर्खता जरूरी है। शेक्सपीयर के नाटक मर्चेंट ऑफ वेनिस का सूदखोर शायलॉक, ज्यादा उदार लगता है।) मेरे पिताजी (यदि वे जीवित होते) को यह जानकर आश्चर्य होता कि पैसे बचाना अब गरिमाहीन माना जाता है।

सरकार भी इसे हतोत्साहित करती है, इसलिए यदि आप कर चुकाने के बाद हुई आमदनी में से कुछ बचत करें और उस पर ब्याज कमाएं तो आपसे उस पर उसी दर से टैक्स वसूल लिया जाता है। हाल ही में जब कथित बड़े नोटों को चलन से बाहर किया गया तो मेरी पत्नी को बड़ा सबक मिला। उसने अपने मासिक खर्च में से इन 35 वर्षों में कुछ पैसा बचाकर ज्यादातर महिलाओं की तरह छिपा रखा था। जिस क्षण नोटबंदी की घोषणा हुई उसके तो होश फाख्ता हो गए। सौभाग्य से एक दयालु किराने वाले ने उन नोटों के बदले उसे सालभर का सामान कुछ प्रीमियम लेकर दे दिया। एक मेडिकल स्टोर ने भी मदद की। इस तरह पूरी तरह टैक्स चुकाकर इकट्ठा किए गए उन नोटों के बदले जो उसने हमसे छिपाए थे, अब हमारे पास दवाइयों का दो साल का स्टॉक है, जिसे हम उपयोग करें या न करें। घर में (हमारे व चूहों के लिए) किराने का विशाल भंडार मौजूद है।

इस सबकी शुरुआत इसलिए हुई कि किसी नौकरशाह ने सरकार से कहा कि बचत का पैसा वास्तव में काला पैसा ही है, यदि यह बैंक में नहीं रखा गया है। यह मूर्खतापूर्ण दलील है। मैं कई लोगों को जानता हूं, जो जरूरी नहीं कि कस्बों व गांव से ही हों, जिन्हें नकदी पास में रखना अच्छा लगता है। उन्हें यह अहसास ही नहीं था कि एक दिन ऐसी सरकार आएगी, जिसे नकदी से इतनी नफरत होगी कि वह कुछ कर चोरों को पकड़े के प्रयास में लाखों निर्दोष भारतीयों को चोट पहुंचाने पर उतारू हो जाएगी, जबकि वे कर चोर विदेश में बैठकर हंस रहे होंगे, क्योंकि कर चोरी करने वाला कोई व्यक्ति घर में नकदी पड़ी नहीं रहने देता।

जहां तक गरीबों की बात है तो वे इसलिए नकदी रखते हैं कि उनके पास कोई विकल्प नहीं है। क्या आपने देखा है कि जब वे खाता खोलने जाते हैं तो बैंक उनके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? यदि वे मेरी-आपकी मदद से खाता खोल भी लें तो सालाना केवाईसी जैसे उन्हें परेशान करने के लिए ही है। यहां तक कि मैंने भी बरसों के फ्रस्ट्रेशन के बाद एक पूर्णकालिक आदमी की सेवा ली है, जो हमारी केवाईसी जरूरतों का ख्याल रखता है। सच तो यह है कि जान-बूझकर कर्ज न चुकाने वाले कुछ मुट्ठीभर लोगों का 6 लाख करोड़ हमारे बैंकों में फंसा पड़ा है। उन पर कार्रवाई की जरूरत है, पूरी अर्थव्यवस्था पर नहीं।

प्रीतीश नंदी, वरिष्ठ पत्रकार और फिल्म निर्माता (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

Date: 18-01-17

फ्रांस हर वयस्क नागरिक को देगा Rs. 54,400/ माह, क्योंकि रोबोट के कारण लाखों लोगों की नौकरियां हो जाएंगी खत्म

फ्रांस ऐसी योजना पर विचार कर रहा है, जिसमें देश के हर वयस्क नागरिक को घर बैठे हर माह करीब 54 हजार रुपए दिए जाएंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि माना जा रहा है कि 2025 तक करीब 30 लाख नौकरियां रोबोट के कारण खत्म हो जाएंगी। इस तरह की एक योजना फिनलैंड में प्रायोगिक तौर पर चल रही है। अगर फ्रांस में यह योजना लागू की जाती है तो इससे सरकार पर हर साल 50,450 अरब रुपए का भार आएगा। योजना का विरोध करने वालों का कहना है कि इससे देश में आलस की प्रवृत्ति बढ़ेगी, लेकिन राष्ट्रपति पद के टिकट के दावेदार सोशलिस्ट पार्टी के दो कैंडिडेट फ्रांस के सभी वयस्कों को घर बैठे निश्चित रकम देने के समर्थन में हैं। बेनोइट हैमन ने योजना पर विस्तार से बात करते हुए कहा कि शुरुआत में 18 से 25 की उम्र के गरीब लोगों को 600 यूरो (43,500 रु.) देकर शुरुआत की जानी चाहिए, बाद में सभी वयस्कों को 750 यूरो (54,500 रु.) दिए जाने चाहिए।

सच बोलने का साहस जुटाना होगा : हैमन की ही तरह योजना का समर्थन करने वाले पूर्व पार्लियामेंटेरियंस (सांसदों) का कहना है कि अब तेज आर्थिक विकास और सभी को नौकरियों के दौर की बात करना बेमानी है। यूरोपीय देशों में चार-पांच फीसदी की विकास दर का समय खत्म हो चुका है। हमें लोगों से सच बोलने का साहस जुटाना चाहिए।

अमेरिका में आधे लोग खो सकते हैं नौकरियां

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के 2015 के अध्ययन में सामने आया है कि अमेरिका में ऑटोमेशन के कारण लगभग आधी नौकरियां खतरे में हैं।

स्विट्जरलैंड में नकारा था

इस आइडिया पर स्विट्जरलैंड में जनमत संग्रह 2016 में हो चुका है, लेकिन लोगों ने योजना को अस्वीकार कर दिया था। वहां लोगों को करीब 1.70 लाख रुपए प्रतिमाह की बेसिक इनकम देने का प्रस्ताव था।
फ्रांस में घर बैठे निश्चित रकम देने की योजना का मुख्य कारण ऑटोमेशन और मशीनीकरण है। इस वजह से कामगारों को नौकरियों से हटाया जा रहा है। योजना का समर्थन करने वाले फ्रांस के शिक्षामंत्री बेनोइट हैमन का कहना है कि अगले 8-9 साल में ही 30 लाख लोग बेरोजगार हो जाएंगे। उनका कहना है कि योजना के तहत मिलने वाली रकम से लोग भविष्य के प्रति आशंकित नहीं होंगे। उनके पास परिवार और खुद के लिए ज्यादा समय होगा।

Date: 18-01-17

30 साल में निचले तबके में से 50% की कमाई नहीं बढ़ी, जबकि 1% अमीर लोगों की कमाई 300% तक बढ़ गई

असमानता को लेकर लोगों का धैर्य टूटा, लोग मौजूदा स्थिति सहन करने को तैयार नहीं- रिपोर्ट

गरीबी और असमानता को लेकर विश्व बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया में असमानता का स्तर पिछले 25 साल में सबसे ऊंचे स्तर पर पहुंच गया है। इसी तरह सोमवार को जारी लंदन के संगठन ऑक्सफैम के मुताबिक इस दौरान शीर्ष 1% अमीरों ने उतना पैसा कमा लिया, जितना 50% गरीब मिलकर भी नहीं कमा सके। चौंकाने वाली बात यह है कि पिछले 30 साल में दुनिया में निचले तबके के करीब आधे लोगों की कमाई में कोई इजाफा नहीं हुआ। जबकि इस दौरान दुनिया के 1% अमीरों की आय 300% तक बढ़ गई। ऑक्सफैम ने चेतावनी दी है कि अगर यही ट्रेंड जारी रहा तो असमानता का खतरा और बढ़ेगा। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस असमानता की वजह से लोगों का धैर्य जवाब देने लगा है। यहां तक कि अमीर देशों में भी ज्यादातर लोग मौजूदा स्थिति को लंबे समय तक सहन करने के लिए तैयार नहीं है।

दुनिया को स्कूलों की जरूरत है, लग्जरी यॉट्स की नहीं: मार्क

दावोस में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की बैठक हो रही है। इसके एजेंडे में असमानता मुख्य मुद्दा है। इसी पर दैनिक भास्कर के सुधीर दीक्षित ने ऑक्सफैम के सीईओ मार्क गोल्डरिंग से ई-मेल के जरिए बातचीत की-

दुनिया में इतनी असमानता क्यों हैं?

पैसों को लेकर इतनी असमानता कभी नहीं देखी। फायदे के लिए शोषण करने वाले विकृत बिजनेस मॉडल असमानता बढ़ा रहे हैं। अमीरों को ज्यादा रिटर्न मिलता है, जबकि असली हकदार कर्मचारी हैं।

दावोस में लक्जरी रिसॉर्ट जैसी जगह पर गरीबी पर चर्चा। कितना उचित है?

समस्या कुछ अमीर लोगों की वजह से है। वे ही समाधान का हिस्सा भी हो सकते हैं। हमें कई कंपनियों ने ईमानदारी से टैक्स चुकाने, पर्याप्त सैलरी देने का वादा किया है।

क्या टैक्स हैवन्स खाई बढ़ा रहे हैं?

बिल्कुल, टैक्स चोरी असमानता का बड़ा कारण है। इससे विकासशील देशों को सालाना 6,800 करोड़ का नुकसान हो रहा है।

वैश्विक स्तर पर गरीबी मिटाने की बात होती है। लेकिन हुआ कुछ नहीं?

सरकारों को टेक्नोलॉजी और बाजार का गुलाम नहीं होना चाहिए। बल्कि वह काम करना चाहिए जिसके लिए चुना गया है। ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए जो सबके लिए काम करें, न कि सिर्फ चुनिंदा लोगों के लिए।

टैक्स चोरी करने वाले कॉर्पोरेट्स पर कैसे लगाम लगा सकते हैं?

दुनिया को स्कूलों की जरूरत है, न कि लग्जरी यॉट्स की। कंपनियां फाउंडेशन और ट्रस्ट बनाकर टैक्स चोरी करती हैं। इन्हें रोकना होगा।

समाधान:सरकारें 1% अमीरों के लिए नहीं बाकी 99% गरीब लोगों के लिए काम करें

- ऐसी नीतियां बनें जो सबके लिए फायदेमंद हों। सरकारें आपस में सहयोग करें, प्रतिस्पर्धा नहीं। पुरुषमहिला को समान मौके मिलें।
- जीडीपी की जगह मानव विकास को महत्व देना होगा।
- कंपनियां सभी के फायदे के लिए काम करें।
- धन से ध्यान हटाकर गरीबी मिटाने के लिए काम करना जरूरी।

खतरा:गरीब आबादी की कमाई नहीं बढ़ी, तो आर्थिक ग्रोथ भी नहीं होगी : आईएमएफ

- अगर ऊपर के लोगों की आय 1% बढ़ेगी, और निचले 20% तबके की आय घटेगी तो विकास दर 0.08% तक गिर जाएगी।
- आय न बढ़ने से निचला वर्ग प्रभावित होगा तो उत्पादकता घटेगी।
- अपराध और हिंसा काे बढ़ावा मिलेगा। नए नस्लवाद का खतरा।
- असमानता के कारण 20 से ज्यादा सभ्यताएं खत्म हो चुकी हैं।
- वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम के मुताबिक दुनिया में महिला और पुरुषों की कमाई में भारी अंतर है। ऐसा इसलिए है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम सैलरी मिलती है। उनकी कमाई में 31-70% अंतर है। ऐसे में दोनों की कमाई बराबर होने में 170 साल लगेंगे। अमीर देशों की सूची में हम टॉप-10 में हैं। व्यक्तिगत संपत्ति में भारत 350 लाख करोड़ रुपए के साथ सातवें नंबर पर है। व्यक्तिगत संपत्ति यानी देश में सभी लोगों की निजी संपत्ति से हैं। दूसरा पहलू यह है कि हमारे यहां 58% संपत्ति महज 1% अमीरों के पास है।

1. ***सुपर रिच की भूमिका*** -कम से कम टैक्स देना ज्यादातर सुपर रिच लोगों की रणनीति होती है। इसके लिए वे सीक्रेट नेटवर्क का इस्तेमाल करते हैं। जैसा पनामा पेपर के खुलासे में हुआ था।

2. ***कॉर्पोरेट टैक्स की चोरी*** -कंपनियां कम टैक्स देकर अपना मुनाफा बढ़ा लेती हैं। इसके लिए वे टैक्स हेवेन देशों का इस्तेमाल करती हैं। इस वजह से दुनिया भर में कॉर्पोरेट टैक्स में गिरावट आई है।

3 ***क्रोनी कैपिटलिज्म, लॉबिंग*** -वित्त, खनन, ऊर्जा, गारमेंट, फार्मा की कई कंपनियां पैसे और राजनीतिक प्रभाव के दम पर ऐसी नीतियां बनवा लेते हैं, जो इनके लिए फायदेमंद हो। लॉबिंग भी की जाती है।

4. ***मजदूरी कम दे रही हैं कंपनियां*** -दुनिया भर की कंपनियां लेबर कास्ट कम करने में जुटी हैं। कंपनियों के सीईओ को की आय में तो भारी बढ़ोतरी हो जाती है। लेकिन कर्मचारियों को वेतन कम देते हैं।

5. ***बड़े शेयरधारकों को फायदा*** -ज्यादातर कंपनियों में मालिकों के शेयर ही ज्यादा होते हैं। ऐस में उन्हें छोटी अवधि में बड़ा फायदा पहुंचा दिया जाता है। जितना ज्यादा रिटर्न मिलेगा, उतना ज्यादा फायदा।

6. ***कंपनियों में शोषण*** -ऊपर बैठे लोगों को फायदा पहुंचाने के लिए निचले स्तर पर काम करने वालों का शोषण किया जाता है। इससे उन्हें वह फायदा नहीं मिल पाता जिसके वे हकदार हैं।

दैनिक जागरण

Date: 18-01-17

निश्चित आमदनी का सही समय

यूनिवर्सल बेसिक योजना के अंर्तगत देश के हर नागरिक को जीविका के लिए रकम हर माह सरकार द्वारा दी जाएगी। आज पूरे विश्व में रोजगार घट रहे हैं। आटोमैटिक मशीनों ने मजदूरों के तथा कंप्यूटरों ने शिक्षितों के रोजगार छीन लिए हैं। रोजगार के माध्यम से जीविकोपार्जन करना लगभग असंभव हो जा रहा है। ऐसे में हर नागरिक को एक न्यूनतम रकम उपलब्ध करा दी जाए तो रोजगार के अभाव में भी वह जीवनयापन कर सकेगा। देश के 20 करोड़ परिवारों को ऐसी रकम उपलब्ध कराना कठिन दिखता है, परंतु ऐसा नहीं है। सरकार के द्वारा जनकल्याण के नाम पर तमाम अधकचरी योजनाओं पर भारी रकम खर्च की जा रही है।

यह रकम मूल रूप से सरकारी कर्मियों के वेलफेयर माफिया को पोषित करने में खर्च की जा रही है। इन योजनाओं को बंद कर दिया जाए तो यूनिवर्सल बेसिक इनकम के लिए वर्तमान बजट में ही रकम उपलब्ध हो जाएगी। वित्त मंत्रालय द्वारा जारी इंडियन पब्लिक फाइनेंस स्टैटिस्टिक्स के अनुसार वर्ष 2014-2015 में केंद्र द्वारा जन कल्याण के निम्न खर्च किए गए। शिक्षा में 81 हजार करोड़ रुपये, स्वास्थ्य में 24, परिवार कल्याण 13, आवास 23, शहरी विकास 14, ग्रामीण विकास 119, फर्टिलाइजर सब्सिडी 73 और फूड कार्पोरेशन ऑफ इंडिया यानी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में 115 हजार करोड़ रुपये। इनका योग 462 हजार करोड़ रुपये हुआ। महंगाई को जोड़ लें तो वर्ष 2016-17 में यह

लगभग 530 हजार करोड़ रु. बैठेगा। इन रकम में दो प्रकार के खर्च शामिल हैं। जैसे शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय परीक्षा व्यवस्था को चलाने का खर्च तथा स्कूलों तथा यूनिवर्सिटियों में शिक्षा प्रदान करने का खर्च, दोनों शामिल है। इनमें परीक्षा का कार्य सरकार को ही करना होगा। इसका प्राइवेट विकल्प नहीं है। परंतु केंद्रीय विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में युवाओं को सरकार द्वारा शिक्षा देना जरूरी नहीं है। वे शिक्षा को प्राइवेट स्कूल में हासिल कर सकते हैं। यूनिवर्सल बेसिक इनकम के अंतर्गत इन्हें राशि मिल जाए तो वे अच्छे प्राइवेट स्कूल की फीस अदा कर सकते हैं। शिक्षा उपलब्ध कराने के कार्य से सरकार को मुक्त किया जा सकता है।

मेरा अनुमान है कि उपरोक्त 530 हजार करोड़ के खर्च में 10 प्रतिशत परीक्षा जैसे जरूरी कार्यों के लिए किए जाते हैं। इन खर्चों को बरकरार रखें और शेष सभी को रद्द कर दें तो 480 करोड़ रु. उपलब्ध हो सकते हैं। देश के 20 करोड़ परिवारों में इस रकम को वितरित कर दिया जाए तो हर परिवार को 24,000 रुपये प्रति वर्ष या 2,000 रुपये प्रति माह दिए जा सकते हैं। इस रकम से लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, फर्टिलाइजर, खाद्यान्न आदि की व्यवस्था कर सकते हैं। इस रकम को हासिल करने के लिए उन्हें मनरेगा जैसे फर्जी कार्यक्रम में अपना समय बर्बाद नहीं करना होगा। वे दूसरे कार्यों से कमाई भी कर सकते हैं। ऊपर बताई गई गणित में देश के सभी 20 करोड़ परिवारों को यह रकम दी जाएगी। इसमें टाटा बिड़ला भी शामिल हैं। प्रश्न है कि इन अमीरों को यह रकम दी जानी चाहिए या नहीं? सभी नागरिकों को इस रकम को उपलब्ध कराने में लाभ है कि लाभार्थी के चयन से देश मुक्त हो जाएगा। गांधीजी ने दलितों के लिए अलग चुनाव क्षेत्रों की मांग का यह कहकर विरोध किया था कि इनसे दलित पर सदा के लिए 'दलित' का ठप्पा लग जाएगा।

यह बात बीपीएल और एपीएल के विभाजन पर भी लागू होती है। रकम केवल बीपीएल को उपलब्ध कराने पर गरीब पर सदा के लिए 'बीपीएल' का ठप्पा लग जाएगा। जनता में गरीब अमीर का विभाजन बना रहेगा। समाज में गरीब बनने की होड़ मचेगी। अत: यह रकम समभाव से देश के सभी नागरिकोेंं को दी जानी चाहिए। उच्च आय के लोगों पर टैक्स के माध्यम से इसे वापस वसूल कर लेना चाहिए। सरकार को अध्ययन कराना चाहिए कि बाजार में किन माल का उपभोग निचले 50 प्रतिशत लोगों के द्वारा किया जाता है और किन माल का उपभोग ऊपरी 50 प्रतिशत लोगों के द्वारा अधिक किया जाता है।

मान लीजिए ऊपरी 50 प्रतिशत जनता द्वारा चाकलेट, पेट्रोल, महीन कपड़ा, बड़े टीवी आदि अधिक खरीदे जाते हैं। इन पर टैक्स की दर बढ़ाकर उन उपभोक्ताओं को बेसिक इनकम के रूप में दी जा रही रकम को वापस वसूल किया जा सकता है। अथवा इनकम टैक्स की दर बढ़ाई जा सकती है। टैक्स की दरें बढ़ाने को ऊपरी वर्ग का विरोध नहीं होगा। एक हाथ से इन्हें यूनिवर्सल बेसिक इनकम की रकम मिलेगी तो दूसरे हाथ से पेट्रोल की खरीद के माध्यम से वह रकम निकल जाएगी। इन पर अतिरिक्त बोझ नहीं पड़ेगा। इस प्रक्रिया से सभी देशवासियों को दी जाने वाली रकम दो गुनी की जा सकती है। ऊपर बताया गया है कि वर्तमान में चल रहे जनकल्याण के कार्यक्रमों को रद करके 480 हजार करोड़ रुपये प्रति वर्ष की बचत की जा सकती है। इतनी ही रकम ऊपरी 50 प्रतिशत नागरिकों से पेट्रोल आदि पर टैक्स बढ़ाकर वसूल कर ली जाए तो कुल 960 हजार करोड़ की रकम उपलब्ध हो जाएगी। इससे हर परिवार को 48,000 रुपये प्रति वर्ष या 4,000 रुपये प्रति माह की रकम दी जा सकती है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 17-01-17

Next door Nepal: *Who will judge the judges?*

In both cases, the Supreme Court reversed its own judgment given a couple of years ago, citing "grave error in justice" as the reason for entertaining respective appeals.

Last week, Nepal's Supreme Court settled two major cases. A three-member bench annulled the appointment of Lokman Singh Karki, chief of the anti-graft constitutional body, inferring that he lacked the necessary qualification and the "high moral character" the office called for. In another judgment, the court said that the little less than one hectare land in Kathmandu that Gyanendra Shah gave as a wedding gift to his daughter when he was the king, is a property that should belong to the "National Trust", a body created to take over and manage property of the erstwhile royals. In both cases, the Supreme Court reversed its own judgment given a couple of years ago, citing "grave error in justice" as the reason for entertaining respective appeals. What is amazing is the speed at which justice was delivered — less than four months — when there are about 22,000 cases pending in the apex court, some for years.

Interestingly, Karki was appointed to the post nearly 45 months ago by the cabinet that was headed by the-then Supreme Court chief justice, Khilraj Regmi, on the recommendation of the heads of the four major political parties, including the current prime minister, Pushpa Kamal Dahal.A two-member bench of the Supreme Court had dismissed a public interest litigation challenging Karki's appointment two years ago. Another two-member bench headed by the-then chief justice, Ram Kumar Shah, had disposed off the "wedding gift" case in favour of the princess around the same time. Some civil society activists had taken to the streets, objecting to Karki's appointment as the anti-graft head, a constitutional body, alleging that his track record as a bureaucrat was not good and that he did not have the "high moral character" the post demanded. The Supreme Court entertained a PIL recently by the same person, and found merit in his plea this time.

The fast-track judgments have raised serious questions about the fairness and impartiality of the judiciary that has now openly started recruiting judges according to their political allegiance. Although the two recent verdicts make no explicit adverse comments on the judges in the previous benches, the ground given for their review — "gross errors in judgment" — can be read as a disapproval of the judicial character and knowledge displayed by the judges whodelivered the earlier verdicts.

The Judicial Council, headed by Chief Justice Sushila Karki, met till Friday midnight to finalise the list of 80 high court judges amidst a "boycott" by two of the five members. Justice Baidhyanath Upadhyay, next to the CJ in seniority, and Ram Prasad Sitaula, who represents the Nepal Bar in the council, abstained, apparently protesting a perceived "deal" between the CJ and Maoists in the appointment of the judges. Incidentally, only three members — the chief justice, law minister and the government nominee to the council, the last two belonging to the Maoist party — approved the panel of judges drawn from the judicial service, Bar and the lower courts. Some of those selected are close relatives of prominent Nepali Congress leaders.The current chief justice has chosen not to constitute the "constitutional bench" as mandated by the constitution, as she does not get along with the senior-most judges entitled to be on that bench, fuelling discontent within. The failure or inadequacy of the apex court has raised yet another fundamental question: Who is the judiciary accountable to? A discredited judiciary will have a far bigger impact on democracy than failing politicians.

A decade ago, by joining the peace process, the Maoists gave out the message that they will no longer pursue "totalitarian" politics. They advocated a judiciary in which judges have to be accountable to the legislature, but

with their numbers declining in the second Constituent Assembly cum legislature, they gave up the demand. However, in 2012, a new political experiment, a compromise on the principle of separation of powers, was undertaken that made Khil Raj Regmi, chief justice of the Supreme Court, the prime minister as well. India, the European Union and the UN approved it.

In India's case, it was not only the UPA government then that welcomed the decision, but Ravi Shankar Prasad, a senior Opposition leader then and a Union minister now, travelled to Kathmandu and welcomed the head of judiciary being given the additional executive responsibility. This was conveying a message that the Opposition in India concurred with key political initiatives that the Indian establishment took during the transition, including bringing the Maoists to the democratic process, 2005 onwards.

yubaraj.ghimire@expressindia.com

राष्ट्रीय सहारा

Date: 17-01-17

वक्त की यही मांग

समावेशी विकास एवं समावेशी समाज के लिए सबसे आवश्यक तत्व है समावेशी शिक्षा.

भारत के वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में समावेशी शिक्षा के सत्य से साक्षात्कार के लिए सर्व-शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान की समीक्षा जरूरी है. जैसा कि विदित है ये तीनों अभियान क्रमश: प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा को गति प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू किए गए हैं.

कहना न होगा कि इनकी शुरुआत की तिथियां अलग-अलग हैं और इनके संचालन में भी आवश्यक भिन्नता है. देश सर्व शिक्षा अभियान की प्रगति से उत्साहित है, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान अपने निर्धारित उद्देश्य की दिशा में मजबूती से बढ़ रहा है और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान से भी राज्य के विश्वविद्यालयों को काफी अपेक्षा है. परंतु क्या यह भारत की शिक्षा को समावेशी स्वरूप प्रदान करने के लिए काफी है? योग्य एवं प्रशिक्षित प्राध्यापकों की कमी, विद्यालय की कमी और विद्यालयों में आधारभूत संरचना का अभाव सर्व शिक्षा अभियान की सफलता के सामने कड़ी चुनौती है.

हाईकोर्ट के निर्देश के बाद भी सरकारी अधिकारी अपने बच्चों एवं बच्चियों के नामांकन सरकारी विद्यालयों में कराने की स्थिति में नहीं हैं, फिर यह स्वयंसिद्ध है कि हमारा विद्यालय कितना समावेशी है! वैसे तो समावेशी शिक्षा की ओर पहला कदम दिव्यांगों की शिक्षा के रूप में उठा था. मगर कालक्रम में वंचितों की शिक्षा से भी इसका संबंध जुड़ता चला गया. समावेशी शिक्षा से अभिप्राय आज ऐसी शिक्षा से है, जो एक ही प्रागंण में सभी को शिक्षा प्रदान करती हो, किसी वर्ग या श्रेणी के लिए अलग से शिक्षा प्रदान नहीं करती हो.

शिक्षा-शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के मत ने आज इस विषय को और ज्यादा महत्त्वपूर्ण बना दिया है. उनका यह मानना है कि समावेशी शिक्षा न केवल राष्ट्रीय एवं सामाजिक जरूरत है, बल्कि सभी श्रेणी के विद्यार्थियों के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक भी है. यह कहना भी अनुचित न होगा कि वे यह सोचते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के संतुलित एवं सर्वांगीण विकास के लिए समावेशी शिक्षा ही एकमात्र विकल्प है. अपनी कोशिशों के बावजूद राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के उद्देश्य से काफी दूर है.

अपने स्थापित उद्देश्य के लिए इस अभियान को बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है. माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षकों की कमी, विद्यालयों का अभाव, विभिन्न प्रकार के विद्यालय, विभिन्न राज्यों की विभिन्न शैक्षिक दुर्बलताएं, मूल्यांकन की चुनौती आदि जैसी कठिन समस्याएं हैं. दुख के साथ कहना पड़ता है कि जब राष्ट्र सबों को माध्यमिक शिक्षा ही उपलब्ध कराने में अशक्त है तो फिर समावेशी शिक्षा की अपेक्षा बेमानी है. समावेशी शिक्षा की दृष्टि से यह तथ्य कितना चौंकाने वाला है कि राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान की सीमा राज्यों के उच्च शिक्षण संस्थानों तक ही है. केंद्रीय उच्च शिक्षण संस्थान इससे परे हैं.

नैक मूल्यांकित संस्थानों को ही अनुदान देने की इस अभियान की शर्त शैक्षिक संस्थानों की समस्याओं एवं कमियों के आलोक में समावेशी शिक्षा की अवधारणा के विपरीत है. शिक्षकों के खाली पद, संस्थानों के भौतिक संसाधन, प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय की बदतर स्थिति आदि उनके सामने गहन चुनौती प्रस्तुत करता है. एक तरफ तो ये संस्थाएं इन चुनौतियों में फंसे हैं तो दूसरी तरफ खराब नैक ग्रेड उन्हें अनुदान से वंचित करता है. कुछ संस्थान तो नैक के मूल्यांकन की आवश्यक अर्हता भी पूरी नहीं करते. कहना न होगा कि ऐसी स्थिति सरकारी संस्थानों की ही है और यह भी विदित है कि इन संस्थाओं में पढ़ने वाले छात्रा-छात्राएं भी अधिकतर समाज के कमजोर तबकों से ही संबंधित है. सरकारी उच्च शिक्षा संस्थानों में भौतिक संसाधन की कमी, शिक्षकों के रिक्त पड़े पद, नये आवश्यक पदों की स्वीकृति, संस्थानों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता में कमी आदि जैसी समस्याएं समावेशी शिक्षा की दिशा में किए जा रहे प्रयासों की पोल खोल देती है.

कल का गौरवशाली संस्थान आज रंग-रोगन तक के लिए तरस रहा है. हमारी ये गौरवशाली संस्थाएं, जिन्होंने समाज को हर क्षेत्र के लिए विभूति प्रदान की है-कुप्रबंध, वित्तीय संकट एवं शिक्षकों की कमी की वजह से बदहाल हैं. केंद्रीय मानव संसाध मंत्री का हाल में दिया यह बयान की भारत बीस विस्तरीय विश्वविद्यालय प्रदान करेगा, जिसमें से दस सरकारी एवं दस निजी होंगे- किस समावेशी शिक्षा की तरफ इशारा करता है? वर्तमान केंद्र सरकार द्वारा पांच अल्पसंख्यक विश्वविद्यालयों की स्थापना की सोच भी समावेशी नहीं है.

विद्यालय स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक निजी संस्थाओं की बढ़ती संख्या और प्रभाव समावेशी समाज के समावेशी शिक्षा के जरिये समावेशी विकास की योजना के लिए लाभकारी होगी-संदेह है. समावेशी शिक्षा में समान शिक्षा, सबके लिए शिक्षा, समावेशी विकास के लिए शिक्षा और समावेशी समाज के निर्माण जैसी अवधारणाएं समाहित है. देश में विद्यालय स्तर से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर तक सरकार की निजी संस्थाओं के विकास के प्रति सोच, सरकारी संस्थाओं की कमी, सरकारी संस्थानों में पढ़ने वाले छात्रा-छात्राओं की सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षकों की घोर कमी और भौतिक सामग्री का अभाव समावेशी शिक्षा के सच को बयान करने के लिए काफी है.

यदि हम कुछ स्तरीय सरकारी संस्थाओं को अपवाद मान लें तो यह सहज बोध होता है कि शिक्षा को समावेशी स्वरूप देने के लिए अभी काफी कुछ करना शेष है. और इस दिशा में सबसे अहम सरकारी संस्थाओं के प्रति समाज के प्रबुद्ध व्यक्तियों, सरकारी आलाधिकारियों के साथ-साथ हमारे राजनेताओं की सोच है. इस दृष्टि परिवर्त्तन की दरकार शिक्षा को समावेशी करने के लिए है. वह भी तब, जब राजनीतिक कारणों से नई संस्थाओं को खोलने की कोशिश तो होती है किंतु स्थापित संस्थाओं को विकसित करने का पूरा प्रयास नहीं किया जाता.